सत्कार्यवाद (भारतीय दर्शन में कारणता)

धर्म सिंह सहायक प्राध्यापक संस्कृत

राजकीय महाविद्यालय भट्टू कलां (फतेहाबाद)

कारणावाद के दो मूल प्रश्न है :–

1. क्या कार्य अपने कारण में पहले से छिपा रहता है ?
2. क्या कार्य कारण से स्वतंत्र एक नई उत्त्पति है ? इन प्रश्नों को लेकर भारतीय दर्शन में कार्य कारण सम्बन्धी दो विरोधी सिद्धान्त प्रस्तुत हुए। 1 सत्कार्यवाद 2 असत्कार्यवाद
हम यहां केवल सत्कार्यवाद का ही विवेचन कर रहे है :–

सत्कार्यवाद – सत्कार्यवाद के अनुसार कार्य अपनी उत्त्पति से पूर्व अपने कारण में छिपा रहता है। जैसे तेल उत्त्पति से पूर्व तिल में छिपा रहता है। इसमें दो बाते स्पष्ट होती है :–

1. कार्य उत्त्पति से पूर्व भी सत् है।
2. कारण कार्य की अत्यक्तावस्था है।

सांख्य दर्शन में कारण में कार्य की सता मानी जाती है। इस लिए इस दर्शन का सिद्धांत सत्कार्यवाद कहलाता है। सत्कार्यवाद सांख्य दर्शन का मुख्य आधार है। इस सिद्धान्त के अनुसार बिना कारण के कार्य की उत्पति नहीं हो सकती। फलतः इस जगत की उत्पति शून्य से नहीं, किसी मूल सत्ता से है। सत्कार्यवाद कारणवाद का न्याय दर्शन सम्मत सिद्धान्त है। इसके अनुसार कार्य उत्पति के पहले नहीं रहता। न्याय के अनसुार उपादान और निमित कारण अलग–अलग कार्य उत्पन्न करने की पूर्ण शक्ति नहीं है किन्तु जब ये कारण मिलकर व्यापारशील होते हैं तब इनकी सम्मिलित शक्ति ऐसा कार्य उत्पन्न होता है जो इन कारणों से विलक्षण होता है। यह सिद्धान्त बौद्धों के शून्यवाद से विपरीत है। कार्य अपनी उत्पत्ति से पूर्व

कारण में विद्यमान रहता है। कार्य अपने कारण का सार है। कार्य तथा कारण वस्तुत समान प्रक्रिया के व्यक्त– अव्यक्त रूप है। सत्कार्यवाद के दो भेद है परिणामवाद और विवर्तवाद परिणामवाद से तात्पर्य है कि कारण वास्तविक रूप में कार्य में परिवर्तित हो जाता है। जैसे तिल तेल में, दूध दही में रूपांतरित होता है। विवर्तवाद के अनुसार परिवर्तन वास्तविक न होकर आभास मात्र होता है। जैसे रस्सी में सर्प का आभास होता है सत्कार्यवाद कार्य को उत्पति से पहले कारण में स्थित मानता है। अतः उसका सिद्धान्त सत्कार्यवाद कहलाता है।

सत्कार्यवाद के अनुसार कार्य अपने कारण में पूर्व में ही विद्यामान रहता है। कार्य कोई नवीन वस्तु नहीं बल्कि यह कारण की बदली हुई अवस्था है। अर्थात कारण कार्य में पहले अव्यक्त रूप में विद्यमान था जब वह व्यक्त रूप में सामने आता है, तो कार्य कहलाता है। कार्य कारण में सत् होता है यही सत्कार्यवाद है। सत्कार्यवाद के अनुसार अव्यक्त कारण से व्यक्त

कार्य की उत्पति होती है। सांख्यकारिकाकार ईश्वर कृष्ण ने सत्कार्यवाद की स्थापना कारिका में इस प्रकार की है :–

असद्करणादुपादान ग्रहणात्सर्वसंभवाभावात्।

शक्तस्य शक्य करणात् कारणाभावाच्च सत्कार्यम्।

ईश्वर कृष्ण ने सत्कार्यवाद की पुष्टि हेतु निम्न तर्क दिए है :–

1. असद् अकरणात् – सत्कार्यवाद की पुष्टि हेतु पहला तर्क यह है कि जिसका अस्तित्व नहीं है उसकी कभी भी उत्पति नहीं हो सकती। असद्कारणात् का अभिप्राय है – असत् या अविद्यमान होने पर किसी कार्य की उत्पति हो ही नही सकती उदाहरण के लिए बालू रेत से तेल निकालने का प्रयास करने पर तेल नहीं निकल सकता है क्योंकि बालू रेत में तेल का अस्तित्व नहीं है। तेल, तिल से ही निकलेगा, क्योंकि उसी में उसकी सत्ता है।
2. उपादान ग्रहणात् – अर्थात् कार्य के साथ घनिष्ट रूप से सम्बंद्ध कारण ही कार्य को उत्पन्न करता है। कहने का अभिप्राय यह है कि किसी कार्य की उत्पति किसी उपयुक्त कारण से ही हो सकती है। जैसे तेल उत्पन्न करने के लिए तिलहन की खोज की जाती है। दही उत्पन्न करने के लिए दूध की खोज की जाती है। इससे स्पष्ट है कि कार्य अपने उपयुक्त कारण में ही पहले से स्थित होता है।
3. सर्वसम्भवअभावात् – सत्कार्यवाद की पुष्टि हेतु तीसरा तर्क है कि प्रत्येक वस्तु से प्रत्येक वस्तु उत्पन्न नही हो सकती, जैसे बालू रेत से तेल नहीं निकलता है। यदि कार्य अपने खास कारण में छिपा नहीं रहता, तो फिर किसी भी वस्तु से किसी भी वस्तु की उत्पति हो जाती है।

4 शक्तस्य शक्यकरणात् – इस तर्क क अनुसार जो कारण जिस कार्य की उत्पति में समर्थ है, उस समर्थ कारण से उसी शक्य या उत्पाद्य कार्य की उत्पति होती है। कहने का अभिप्राय यह है कि कोई कारण उसी कार्य को उत्पन्न कर सकता है जिसमें वह समर्थ हो। जैसे दूध से दही, मलाई आदि बन सकते है। इससे खाद नहीं बन सकती इससे सिद्ध होता है कि कोई कार्य पहले से ही अपने कारण में निहित होता है।

5 कारणाभावत् – कार्य के कारणात्मक अर्थात् कारण से भिन्न न होने के कारण जब कारण सत् है तो उससे अभिन्न कार्य भी सत् ही होगा। क्योंकि कारण और कार्य एक दूसरे से अभिन्न है। इन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। कारण कार्य का छिपा हुआ रूप है। इससे पता चलता है कि कार्य कारण में उत्पति के पूर्व विद्यमान रहता है। उदाहरणार्थ पट तन्तुओं से बनता है। पट तन्तुओं से भिन्न नहीं है क्योंकि वह तन्तुओं का धर्म अर्थात अवस्था विशेष है। जो जिससे भिन्न होता है वह उसका धर्म नहीं होता । जैसे बैल घोड़े का धर्म नहीं हो सकता। पट तो तन्तुओं का धर्म है। अतः उससे भिन्न नहीं है।

स्पष्ट रूप में सत्कार्यवाद की अवधारणा – कारण कार्य को अभिन्न मानकर चलता है। कारण की व्यक्त अवस्था ही कार्य है। व्यक्त रूप में आने से पहले वह कारण में स्थित होता है। प्रत्येक वस्तु की उत्पति प्रत्येक वस्तु से नहीं हो सकती है। इसका कारण है प्रत्येक वस्तु में भिन्न–भिन्न वस्तु की उत्पति का सामर्थ्य है अगर ऐसा नहीं होता तो बालू से भी तेल उत्पन्न होता।

सहायक ग्रंथ सूची

1. सांख्यकारिका – डॉ ईश्वर कृष्ण
2. सांख्य एवं योगदर्शन – पण्डित श्री राम शर्मा
3. भारतीय दर्शन – श्री हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा
4. सांख्य दर्शन – विनय
5. सांख्य दर्शन – गुरूदत
6. सांख्य दर्शन की ज्ञानमीमांसा एवं तत्वमीमा – डॉ0 अश्नीष कुमार